प्रेम की भावदशा

संजीव कुमार माथुर

एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। एक भिक्षुणी थी--बौद्ध भिक्षुणी। उसके पास एक छोटी-सी बुद्ध की चंदन की प्रतिमा थी। वह अपने बुद्ध को सदा अपने साथ रखती थी। भिक्षुणी थी, मंदिरों में, विहारों में ठहरती थी, लेकिन पूजा अपने ही बुद्ध की करती थी। एक बार वह उस मंदिर में ठहरी जो हजार बुद्धों का मंदिर है, जहां हजार बुद्ध-प्रतिमाएं हैं, जहां मंदिर के कोने-कोने में प्रतिमाएं-ही-प्रतिमाएं हैं। वह सुबह अपने बुद्ध को रख कर पूजा करने बैठी, उसने धूप जलाई। अब धूप तो कोई आदमी के नियम मानती नहीं ! उलटा ही हो गया। हवा के झोंके ऐसे थे कि उसके छोटे-से बुद्ध की नाक तक तो धूप की सुगंध न पहुंचे और पास जो बड़ी-बड़ी बुद्ध की प्रतिमाएं बैठी थीं, उन तक सुगंध पहुंचने लगी। वह तो बहुत चिंतित हुई। ऐसा नहीं चल सकता है। तो उसने एक छोटी-सी टीन की पोंगरी बनाई और अपने धूप पर ढाँकी और अपने छोटे-से बुद्ध की नाक के पास चिमनी का द्वार खोल दिया, ताकि धूप की सुगंध अपने ही बुद्ध को मिले। सुगंध तो मिल गई अपने बुद्ध को, लेकिन बुद्ध का मुंह काला हो गया। वह बड़ी मुश्किल में पड़ी, चंदन की प्रतिमा थी, वह सब खराब हो गई। उसने जाकर मंदिर के पुजारी को कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूं। मेरे बुद्ध की प्रतिमा खराब हो गई, कुरूप हो गई, अब मैं क्या करूं? तो उस पुजारी ने कहा कि जब भी कोई उन सत्यों को जो सब तरफ फैलते हैं, एक दिशा में बांधता है, तब ऐसी ही दुर्घटना और ऐसी ही कुरूपता हो जाती है।

प्रेम को मनुष्य-जाति ने अब तक संबंध की तरह सोचा है, 'रिलेशनशिप' की तरह। दो व्यक्तियों के बीच संबंध की तरह। प्रेम को हमने अब तक 'स्टेट आफ माइंड' की तरह नहीं समझा, कि एक व्यक्ति की भावदशा प्रेम की है। यदि मैं प्रेमपूर्ण हूं, तो एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता हूँ। प्रेमपूर्ण होना मेरा स्वभाव हो जाएगा। मैं अनेक के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाऊंगा--एक-अनेक का सवाल ही नहीं रह जाता, मैं प्रेमपूर्ण हो जाऊंगा। अगर मैं एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण हूं और शेष के प्रति प्रेमपूर्ण नहीं हूं, तो मैं एक के प्रति भी प्रेमपूर्ण नहीं रह पाऊंगा। तेईस घंटे मुझे अप्रेम में जीना प ता है-दूसरों के साथ होता हूँ, एक घंटा जिससे प्रेम करता हूं उसके साथ होता हूं। तेईस घंटे अप्रेम का अभ्यास चलता है, एक घंटे में टूटता नहीं फिर। फिर एक घंटे में, जिसे हम प्रेम कहते हैं वह भी प्रेम नहीं हो पाता, अप्रेम ही हो जाता है। लेकिन समस्त जगत के प्रेमी, नासमझ ही कहना चाहिए, उन्हें प्रेम का कोई पता नहीं, प्रेम को बांध लेना चाहेंगे। और जैसे ही हम प्रेम को बांधते हैं, प्रेम हवाओं की तरह है, मुट्ठी जोर से बांधी तो हवा मुट्ठी में नहीं रह जाती, मुट्ठी खुली हो तो ही रहती है। जोर से बांधी तो हवा बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी में नहीं होती है। प्रेम को बांधने की चेष्टा में ही प्रेम मरता है और सड़ जाता है। हम सबने अपने प्रेम को मार डाला है और सड़ा लिया है--उसे बांधने की चेष्टा में।